दैनिक भास्कर

Date: 12-08-17

इस बार लाल किले से क्या-क्या बोलें मोदी

वेद प्रताप वैदिक

प्रधानमंत्री ने जनता से सुझाव मांगे हैं कि वे इस बार 15 अगस्त को लाल किले से क्या-क्या बोलें? लोकमत को प्रतिध्वनित करने का इससे बढ़िया तरीका क्या हो सकता है? उन्होंने 9 अगस्त के भाषण में भी जनता से अनेक शुभ संकल्प करने की बात कही है। कानून बनाकर कोई बात जनता पर थोपने से यह कहीं अच्छा है कि उसके अमल के लिए करोड़ों लोगों से संकल्प करवाया जाए। यहां पहले हम कुछ संकल्पों का जिक्र करेंगे और फिर कानूनों का! पहले जनता अपना कर्तव्य पूरा करे और फिर सरकार अपना काम करे।

सबसे पहला संकल्प यही करें कि न तो हम रिश्वत देंगे और न ही लेंगे। प्रायः रिश्वत तभी दी जाती है, जब हम कोई गलत काम करवाना चाहते हैं। संकल्प यह भी करें कि थोड़ा नुकसान भुगत लें, लेकिन नियम-विरुद्ध काम न करवाएं। किसी नियमपूर्ण काम के लिए रिश्वत मांगी जाए तो उसके विरुद्ध लड़ें। यदि सिर्फ 10 करोड़ लोग ही यह संकल्प कर लें तो देश में 90 प्रतिशत भ्रष्टाचार खत्म हो जाए। जहां तक मुझे याद पड़ता है, मैंने जीवन के 73 वर्षों में कभी एक पैसा भी रिश्वत में नहीं दिया और जीवन बड़े मजे से चल रहा है। रिश्वत लेने का तो सवाल ही नहीं उठता। दूसरा संकल्प हम यह क्यों न करें कि अपने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में जाति और संप्रदाय को हावी नहीं होने देंगे? व्यक्तिगत जीवन में हम अपने विश्वासों के अनुसार जरूर जिएं, लेकिन सामूहिक पहचान के नाम पर भेड़-बकरीवाद नहीं चलाएंगे। जाति और संप्रदाय को हथियार बनाकर वोट मांगने, नौकरियां लेने और ऊंच-नीच फैलाने का काम बिल्कुल नहीं करेंगे। अपने नाम के साथ जातिसूचक उपनाम लगाना बंद करेंगे।तीसरा संकल्प, सारा कामकाज यथासंभव स्वभाषा में करेंगे। विदेशी भाषाएं स्वेच्छा से पढ़ना-पढ़ाना अति उत्तम है, लेकिन उसे शिक्षा, चिकित्सा, न्याय और राज-काज में अनिवार्य करना राष्ट्रद्रोह से कम नहीं है। शुरुआत दस्तखत से करें। आज तक मैंने देश या विदेश में एक बार भी अंग्रेजी में दस्तखत नहीं किए हैं। चौथा, सर्वोच्च न्यायालय ने शराबबंदी को उचित ठहराया है। यदि करोड़ों भारतीय खुद को हर तरह के नशे से मुक्त रखने का संकल्प लें तो पैसा बचेगा, कार्यक्षमता बढ़ेगी, परिवार में शांति रहेगी और अपराध घटेंगे। पांचवां, यथासंभव हम मांसाहार नहीं करेंगे। यह संकल्प इसलिए जरूरी है कि इससे जीव-दया, स्वास्थ्य और आर्थिक बचत में वृद्धि होती है। अनेक इस्लामी देशों में मेरे कई विद्वान मित्र शाकाहारी हो गए हैं तो आप क्यों नहीं हो सकते?

छठा, देश के अरबों रुपए दवाइयों और अस्पतालों में खर्च हो रहे हैं। यदि देशवासी प्रतिदिन किसी भी प्रकार का व्यायाम करने का संकल्प ले लें तो पूरे देश की कार्यक्षमता दुगुनी हो जाएगी। शास्त्रों में भी कहा गया है- 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' यानी शरीर ही धर्म का पहला साधन है। सातवां, अपने व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में कुछ मर्यादाओं का पालन हर कीमत पर करेंगे। ये लक्ष्मण रेखाएं चाहे आर्थिक लेन-देन की हों, स्त्री-पुरुष संबंधों की हों, अपने राजनीतिक विरोधियों से व्यवहार की हों। **आठवां**संकल्प यह करें कि हम हर अन्याय के विरुद्ध लड़ेंगे लेकिन वह लड़ाई अहिंसक होगी। प्रधानमंत्री सहित देश के सभी नेता ये संकल्प पहले खुद करें तो जनता पीछे नहीं रहेगी। जनता तो इन संकल्पों पर अमल कर सकती है लेकिन सरकार क्या-क्या कर सकती है, इसकी पक्की घोषणा प्रधानमंत्री लाल किले से क्यों नहीं कर सकते? **सबसे पहले** :सरकारों को अपना ध्यान गरीबी दूर करने पर लगाना चाहिए। देश मे 80 करोड़ से ज्यादा गरीब हैं, लेकिन सरकार ने गरीबी की परिभाषा ऐसी कर रखी है कि यह संख्या एक-तिहाई रह जाती है। क्या 28 रुपए गांवों में और 32 रुपए रोज शहरों में कमाने वाले ही गरीब हैं? जो इससे थोड़ा भी ज्यादा कमाता है, क्या वह अमीर है? क्या 28 और 32 रुपए में

किसी व्यक्ति के रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, चिकित्सा और मनोरंजन की व्यवस्था हो सकती है? गरीबी की रेखा कम से कम 100 रुपए रोज पर खींची जानी चाहिए।

दूसरा : सांसदों, विधायकों, पार्षदों से लेकर पंचों तक जितने भी जनप्रतिनिधि हैं वे अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों-कॉलेजों में ही पढ़ाएं। इस नियम के लागू होते ही देश में शिक्षा का स्तर रातों-रात सुधर जाएगा। यह नियम सरकारी अफसरों और कर्मचारियों तथा जजों पर भी लागू हो। इसी आशय का फैसला इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने कुछ समय पहले दिया था। गैर-सरकारी शिक्षा संस्थानों पर सरकार का नियंत्रण कुछ इस तरह हो कि उनकी स्वायत्तता तो बनी रहे, लेकिन वे लूट-पाट के केंद्र न बनें। **तीसरा:**यही नियम चिकित्सा के मामले में लागू हो। जन-प्रतिनिधि, सरकारी कर्मचारी और उनके परिजन सरकारी अस्पतालों में ही इलाज करवाएं। **चौथा :**देश के सारे काम-काज से अंग्रेजी की अनिवार्यता खत्म की जाए। अंग्रेजी माध्यम से किसी भी विषय की पढ़ाई नहीं की जाए। संसद में, सरकार में, अदालतों में अंग्रेजी के प्रयोग पर अर्थदंड हो। **पांचवां :**सरकारी नौकरियों में जातीय आरक्षण खत्म किया जाए। जो भी वंचित, दलित, गरीब हो, उसके बच्चों को भोजन, वस्त्र, निवास और शिक्षा मुफ्त मिले।**छठा :**युवा-छात्रों पर कोरी किताबों का बोझ लादने की बजाय उन्हें काम-धंधों का प्रशिक्षण दिया जाए ताकि हर साल लाखों नए रोजगार पैदा हों।
सातवां :हमारे राजनीतिक दलों, नेताओं व अफसरों के आय-व्यय का सारा हिसाब प्रतिवर्ष सार्वजनिक किया जाए। ताकि भ्रष्टाचार पर कुछ नियंत्रण हो सके। आठवां, आयकर के स्थान पर व्यय-कर लगाएं। आमदनी नहीं, खर्च पर रोक लगे। ऐसा करके सरकार उस भारतीय जीवन-व्यवस्था को प्रोत्साहित कर सकती है, जो 'त्याग के साथ भोग' का आदर्श उपस्थित करती है। यह हमें अमेरिकी उपभोक्तावाद की नकल से मुक्त करेगी। नौवां, केंद्र सरकार को चाहिए कि वह यूरोपीय संघ की तरह दक्षिण और मध्य एशिया के सभी देशों का एक महासंघ खड़ा करे। यदि प्रधानमंत्री लाल किले से ऐसी घोषणा कर सकें तो अगले 10 वर्षों में हमारे इन देशों के बीच न तो युद्ध होंगे, न फौजों पर अंधाधुंध खर्च होगा और न ही कोई गरीब रहेगा। यह 21वीं सदी एशिया की सदी बन जाएगी।

Date: 12-08-17

हामिद अंसारी की हिदायत में हिंदुस्तानी अस्तित्व की हिफाजत

उपराष्ट्रपति हामिदअंसारी ने बेंगलुरू के नेशनल लॉ स्कूल में जो संदेश दिया है वह भारत के अस्तित्व की आधारशिला है। उन्होंने सैन्य शक्ति को गौरवान्वित किए जाने और दलितों और अल्पसंख्यकों में असुरक्षा की भावना पैदा किए जाने के विरुद्ध आगाह किया है। स्वामी विवेकानंद के हवाले से उनका यह कथन बेहद मौजूं है कि हमें दूसरे मजहब को सिर्फ सहना ही नहीं, उसे सकारात्मक तरीके से अपनाना है क्योंकि सत्य ही सभी धर्मों का आधार है।

डॉ. अंसारी ने उन मूल्यों की याद दिला दी है जिसे लेकर राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने राष्ट्र की परिकल्पना की थी और जिसे संविधान निर्माताओं ने उस पवित्र दस्तावेज में शामिल किया है। देश में चलने वाली विभिन्न धाराएं संविधान और राष्ट्र की अपने-अपने ढंग से व्याख्या करती हैं और उनमें कहीं कहीं कमी और एकतरफा रवैया हावी हो जाता है। इसलिए संवैधानिक पदों पर बैठे राजनीतिज्ञों का यह फर्ज बनता है कि वे उन लोगों को सचेत करें जो कहीं भटक रहे हैं और भारतीय राष्ट्रवाद का संकीर्ण अर्थ निकाल रहे हैं। राष्ट्रवाद जटिल अवधारणा है। इसे समझने के लिए हमें दूसरे देशों के अनुभव भी ग्रहण करना चाहिए। इसीलिए डॉ. अंसारी ने इजराइल की विद्वान याइल तामीर के हवाले से कहा कि राष्ट्रवाद में सहनशीलता होती है और विविधता का सम्मान होता है। वहां संस्कृतियां हैं, लेकिन वे अपनी स्वायत्तता के साथ हैं। परेशानी तभी होती है, जब संस्कृति को केंद्र में रखकर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का निर्माण किया जाता है। उसी से आक्रामक देशभक्ति पनपती है और सहनशीलता विसर्जित होती है। कोई भी तटस्थ विश्लेषक महसूस कर सकता है कि हमारा लोकतंत्र ठीक चल रहा है लेकिन संविधान की मूल भावना समझने और उसे लागू करने के लिहाज से गड़बड़ा रहा है।स्वतंत्रता दिवस की आगामी वर्षगांठ के मौके पर राज्य, नागरिक और राजनीतिक दलों को मिल बैठकर यह सोचना चाहिए कि लोकतंत्र समाज के सभी तबकों को प्रेम और सुरक्षा देने की बुनियादी प्रतिज्ञा करता है और उससे राष्ट्र कमजोर नहीं मजबूत होता है। अगर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी 'सबका साथ सबका विकास' कहते हैं तो वह नारा संविधान के प्रस्तावना के अनुरूप है और उसका पालन सरकार और समाज सभी को पूरी प्रतिबद्धता से करना चाहिए।

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 11-08-17

Do not touch

Move to re-open debate on Article 35A is unwise — loose talk on J&K's special status will only deepen distrust

Editorial

The government's reply last month to the Supreme Court, saying that the questions raised in a petition challenging Article 35A require a "larger debate", has predictably stirred a hornet's nest in Kashmir. The Article was added by a 1954 presidential order issued under Article 370, the constitutional provision that mediates the relationship between the Union of India and Kashmir on conditions agreed upon during the state's 1947 accession. Article 35A empowers the state legislative assembly to specify permanent residents.

The 1956 J&K Constitution defines a Permanent Resident as one who, apart from being an Indian citizen, was a state subject on May 14, 1954, or a resident of the state for 10 years, and owns immovable property in the state. The BJP-RSS aversion to J&K's special status is well known; one of the RSS's oft-stated objectives, reiterated by many in the BJP, is the abrogation of Article 370, which stands in the way of the demographic seen as the "permanent solution" to the problems in Kashmir. As the political party that rules India, and is in the ruling coalition in J&K, the BJP must ask itself if the new legal pro-activism against Articles 35A or 370 is in the national interest, or will lead to more alienation in the Valley.

Kashmiris are not far off the mark when they argue that had it not been for the steady erosion of Article 370 through the years, the situation in Kashmir would not have reached this pass. In the Valley, the government's reply on 35A is being seen as paving the way for moves to do away with Article 370 that excludes J&K from most laws enacted by Parliament, except through presidential orders that have the concurrence of the J&K Legislative Assembly. Indeed, the court has also asked the Centre to respond to a petition challenging Article 370. All this has served to strengthen suspicions that the Centre is using the legal route to bring about the changes that it wants. That Chief Minister Mehbooba Mufti decided to bury the hatchet with a bitter political rival and knocked at the door of National Conference leader Farooq Abdullah for discussions to hammer out a common political position on this matter speaks to the urgency it holds in the Valley. Other parties in Kashmir are joining the effort. The PDP-BJP alliance, frayed already by the Centre's disdain for the painstakingly worked out Agenda for Alliance, can only come under more strain in the coming days, even though the BJP state unit appears to appreciate the importance of 35A better than its bosses in Delhi.Chief Minister Mufti's grim warning that there will be none left in Kashmir to shoulder the tricolour if 35A is struck down should be heeded. As also the statement of National Conference leader Omar Abdullah that opening up 35A for debate is nothing less than questioning the accession itself. The government would be making an akratic choice if it went down this road any further.

THE HINDU

Date: 11-08-17

Towards a clean-up: on meeting sanitation goals

Clearer policies and investment in the right systems are needed to meet sanitation goals

EDITORIAL

The Swachh Bharat Mission is a high-profile national programme enjoying extraordinary political and budgetary support. With its subsidy-based mass toilet-building programme, it has put up millions of individual house latrines in rural areas: a government-commissioned survey estimates that the coverage now extends to 62.45% of households, up from 39% in 2014. Among these households, nearly 92% of people who have access actually use the toilets. Big gaps exist, but these are encouraging trends, given the many positive outcomes that sanitation produces. The most important of these is reduced stress for women, who suffer silently in its absence. There are well-known gains to public health as well. Success can be measured, however, only through a rigorous assessment of how the new facilities fare over time. There is data from undivided Andhra Pradesh to show that household latrines built before the current Swachh programme lapsed into disuse because many rural households did not have a water source. The newer ones may meet the same fate without access to water. Also, Dalit houses tend to have lower coverage, hinting at structural difficulties in accessing schemes. Rural housing also needs stronger policy support, without which it cannot wipe out the deficit of about 60 million units that are needed to plan for universal toilet access.

In the Centre's assessment, Bihar, Jammu and Kashmir, Odisha, Uttar Pradesh and Telangana have particularly failed to upgrade rural sanitation, while Sikkim, Himachal Pradesh, Kerala, Uttarakhand, Haryana and Gujarat have exceeded the goals. Given the substantial funding available from the Centre, State governments cannot have a convincing reason for a poor record. The Union Ministry of Drinking Water and Sanitation, which has introduced a new district-level ranking, should persuade the more backward States to bring about infrastructure improvements. Yet, total Swachh will remain elusive, because even urban India has no comprehensive waste management plan, leave alone the less affluent rural areas. Nearly 60% of sewage generated in the cities currently flows untreated into rivers, waterways, lakes and the sea. The rules on segregation of waste remain on paper even in the bigger cities. It is now left to environmentally conscious citizens to adopt green practices, compost and sort their waste. The big metros generate a few thousand tonnes of garbage every day, and city managers focus their energies on transporting refuse to landfills. Many Indians do not see the waste they generate as

their problem, and consider it to be someone else's responsibility. Mahatma Gandhi saw in this attitude the pernicious roots of societal divisions, and campaigned against it. Achieving his vision for a clean nation will take more than symbolism — it needs clear policies and investments in the right systems.

Date:11-08-17

It's time to focus on the toxic air we breathe

NITI Aayog's draft energy policy ignores the health impacts of energy choices

Dharmesh Shah, is a Chennai- based environmental policy researcher

On June 27, 2017, the Niti Aayog released the draft National Energy Policy. It invited comments from the public to help strengthen its perspectives on some of the complex issues surrounding energy security. Several public policy research and civil society organisations partook in the process and critiqued the policy from various standpoints.

Public health and growth

An important aspect that the draft policy ignores is public health, especially in the context of the energy mix envisaged under the NITI Ambition Scenario. The Ambition Scenario is a tool to arrive at a range of possible energy futures for the energy sector till 2040. The range presents the scenarios which India may follow if it were to follow a business-as-usual path versus if it were to transition to an ambitious pathway which is cleaner and more sustainable.In the document, there are 14 references to health, of which only five relate to public health in the context of household cooking fuel. The rest are analogies to describe the health of the coal sector and discoms. The World Health Organisation (WHO) reports that air pollution is the number one environmental health risk. In 2012, about three million premature deaths were attributable to ambient air pollution. The cumulative toll in terms of illness and impairment is likely to be greater.

According to environmental health researchers, children represent the subgroup of the population most affected by air pollution and will be the primary beneficiaries of policies to reduce fossil fuel emissions. Moreover, research has also established links between public health and a nation's economic growth. The estimated cost of ambient air pollution in terms of the value of lives lost and ill health in OECD (Organisation for Economic Co-operation and Development) countries, India and China is more than $3.5 trillion annually. Similarly, a joint study by the World Bank and the Institute for Health Metrics and Evaluation found that the aggregate cost of premature deaths due to air pollution was more than $5 trillion worldwide in 2013 alone. In East and South Asia, welfare losses related to air pollution were the equivalent of about 7.5% of GDP.

Given that every sector's decisions, including the energy sector, can have repercussions on determinants of health, the WHO's Health in All Policies (HiAP) framework was established wherein health considerations are made in policymaking across different sectors, such as power, transport, agriculture and housing, that could influence health. In keeping with HiAP, the Health and Family Welfare Ministry (MHFW) established a steering committee with the aim to garner multi-sectoral commitment to address the issue of air pollution in India. Furthermore, the National Health Policy of 2017 views reducing air

pollution as vital to India's health trajectory. However, the National Energy Policy neither reflects nor supports the commitment outlined by the MHFW.Vision documents like the National Energy Policy have to strive to minimise the unavoidable health impacts of energy production, and their associated health costs, especially given the policy's stated objectives of sustainability and economic growth. The policy should include a health impact assessment framework to weigh the health hazards and health costs associated with the entire life cycle of existing and future energy projects and technologies. For instance, there is no method under the current policy regime, as proposed by the NITI Aayog, to evaluate the health impacts of coal's contribution to mercury and fine particulate pollution, or the risk of radiation with envisaged increase in nuclear power, or the occupational exposures to silica and cadmium during photovoltaic panel manufacturing.The WHO's initial findings from an expert consultation on Health Indicators of Sustainable Energy provide a good outline to kick-start a similar exercise in India. It lays out a few core and expanded indicators that can help monitor the progress of a nation's energy policy. The core indicators address issues related to health equity where health impact assessments become an integral part of energy policy design and implementation. The expanded indicators stress on the need to develop baseline data by generating emission inventories and source apportionment of urban air pollution that can inform mitigation and intervention policies. A nation's energy policy can have a huge bearing on society and health. It is thus important to ensure that policies directed at energy security are compatible with public health goals.

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 11-08-17

किसानों को चाहिए साहसिक सुधार

आलोक रंजन, पूर्व मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश

देश के ज्यादातर राज्य गंभीर कृषि संकट की **गिरफ्त** में हैं। किसानों का असंतोष व उनकी बेचैनी दिनोंदिन आक्रामक होती जा रही है। मध्य प्रदेश के मंदसौर में जो कुछ हुआ, वह हमारे नीति-नियंताओं के लिए एक झकझोर देने वाला वाकया था। यह कोई छिपी हुई बात नहीं है कि किसानों को उनकी फसलों का सही **मूल्य** नहीं मिल पा रहा है। उनकी आमदनी नहीं बढ़ रही है। दालों और बागवानी उपज की बंपर पैदावार से इनकी कीमतों में भारी गिरावट आई है और किसानों के हक में मूल्यों के स्थिरीकरण की दिशा में कोई सांस्थानिक तंत्र काम नहीं कर रहा। यह एक अजीब सी **स्थिति** है और साथ ही गंभीर चिंता का विषय भी कि एक तरफ तो हम ऊंची विकास दर और प्रति व्यक्ति आय में पर्याप्त बढ़ोतरी की बात कर रहे हैं और दूसरी तरफ, कृषि क्षेत्र की हालत इतनी दयनीय है।कर्ज-माफी का कदम इस संकट का सुविधाजनक सियासी समाधान बनकर उभरा है। पर यह न सिर्फ आधा-अधूरा हल है, बल्कि गलत भी है। इससे फौरी राहत भले मिल जाए, मगर कृषि क्षेत्र में **व्याप्त** संकट का दीर्घकालिक समाधान यह कतई नहीं है। आखिर साल 2008-09 में भी किसानों के कर्ज माफ हुए थे। इसके बावजूद हम अब भी एक बड़े संकट के बीच हैं। यदि हम किसानों की पूर्ण कर्ज-माफी के लिए अभी किसी तरह से संसाधन जुटा भी लें, तो इस बात की कोई गारंटी नहीं कि कुछ वर्षों बाद हम फिर से उसी मुहाने पर नहीं खड़े होंगे। इसलिए कर्ज-माफी मर्ज की ठीक-ठीक पहचान किए बगैर दवा देने जैसी बात है। यह दर्द-निवारक दवा की तरह है, जो फौरी राहत देती है, जड़ से उपचार नहीं करती।

असली मसला यह है कि जब किसानों की **उत्पादन** लागत लगातार बढ़ रही है, तब तमाम रियायतों (**सब्सिडी**) के बावजूद वे अपने उत्पादन का वाजिब मूल्य नहीं हासिल कर पा रहे। ऐसे में, जवाब कृषि बाजारों के सुधार में निहित है। सरकार के भीतर कृषि विभाग का मुख्य फोकस खेती-किसानी के इनपुट पर रहा है। हम मुख्य रूप से बीज, खाद, कीटनाशक व जल की **उपलब्धता** को संभालते रहे हैं। यह जरूरी भी है, क्योंकि जैसी कि कहावत है- सब कुछ इंतजार कर सकता है, मगर खेती में यदि **चीजें** वक्त पर नहीं हुईं, तो फिर

उसका कोई अर्थ नहीं रहता, यानी 'का वर्षा जब कृषि सुखाने?' वक्त पर बीज, खाद, कीटनाशक और पानी की जो यह जरूरत है, वह एक भारी कवायद की मांग करती है और दैनिक रूप से उसकी निगरानी करनी पड़ती है। हालांकि, तकनीकी तरक्की के कारण आज 'इनपुट मैनेजमेंट' बहुत ज्यादा मुश्किल नहीं रह गया है। असली मसला यह सुनिश्चित करना है कि किसानों को उनकी पैदावार के सही दाम मिलें।

औद्योगिक क्षेत्र के उदारीकरण की शुरुआत 1991 में ही हो गई थी, मगर इन सुधारों ने कृषि क्षेत्र की अनदेखी कर दी। पुरानी एपीएमसी (कृषि उत्पाद बाजार समिति) ही यह तय करती है कि एक किसान कहां और कैसे अपनी उपज को बेचेगा? आज भी किसानों की फसल का दाम तय करने का एकमात्र साधन एमएसपी (न्यूनतम समर्थन मूल्य) तंत्र ही है। पिछले करीब दस वर्षों से एपीएमसी में सुधार की बातें होती रही हैं, मगर इसके लिए निर्णायक कदम आज तक नहीं उठाया जा सका है। किसानों को मुनाफा दिलाने में मंडियां बड़ी भूमिका निभाती हैं। पूर्व में गल्ला कारोबारियों के बिचौलिए बेरोक-टोक किसानों का शोषण करते रहते थे, लेकिन मंडी-व्यवस्था ने बिचौलियों की भूमिका खत्म करने की कोशिश की। इस काम में वह कामयाब भी हुई है, पर अब पूरा आर्थिक परिदृश्य ही बदल गया है, इसलिए गतिशील समाधान की आवयश्यकता है। कृषि क्षेत्र का उदारीकरण वक्त की मांग है। कृषि उत्पादों को अब एक राज्य से दूसरे राज्य, बल्कि दूसरे देश में निर्बाध रूप से ले जाने और लाने की अनुमति दी जानी चाहिए। इस कार्य की आजादी की राह में खड़ी रुकावटों को खत्म करने की जरूरत है। यही एकमात्र उपाय कृषि फसलों के मूल्यों में स्थिरता ला देगा। आधुनिक संचार माध्यमों के कारण किसानों के लिए यह पता लगाना अब मुश्किल नहीं है कि कहां किस फसल का क्या दाम है, और इस तरह वे जहां चाहें, अपनी फसल बेच सकेंगे। सीधे उपभोक्ताओं को अपने उत्पाद बेचने को लेकर किसानों पर कोई पाबंदी नहीं होनी चाहिए।

खासकर बागवानी उपज की बिक्री के मामले में।दरअसल, एपीएमसी में सुधार को लेकर इसलिए सफलता नहीं मिल रही है, क्योंकि राज्य सरकारें 'कांट्रेक्ट फार्मिंग' यानी अनुबंधित खेती की अवधारणा का विरोध कर रही हैं। असल में सरकारें अनुबंधित खेती की अनुमति देने के राजनीतिक नतीजों से डरती हैं, इसीलिए वे किसानों के सीधे कृषि प्रसंस्करण क्षेत्र से जुड़ने की राह में बड़ी बाधाएं खड़ी कर रही हैं। हालांकि, अनुबंधित खेती में किसानों के शोषण के डर को खत्म करने के लिए एक संस्थागत तंत्र खड़ा किया जा सकता है। न्यूनतम समर्थन मूल्य का तंत्र मूलत: धान और गेहूं जैसे अनाज के मामले में ही काम करता है। भारतीय खाद्य निगम (एफसीआई) इनकी खरीद करता है। सच्चाई यह है कि निगम सिर्फ पंजाब व हरियाणा के खरीद लक्ष्य को पूरा करने में ही सक्षम है। उसके पास न तो संसाधन हैं और न ही यह इच्छा कि वह पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार जैसी जगहों से खरीद करे, जबकि इन्हीं इलाकों में नई हरित क्रांति शुरू करने की बातें की जा रही हैं। जाहिर है, पिछड़े इलाकों को एमएसपी तंत्र से कोई फायदा नहीं मिल रहा। मैंने देखा है कि उत्तर प्रदेश में, जहां हर वर्ष कुछ न कुछ सरकारी खरीद होती है, छोटे और सीमांत किसान इसके फायदे से वंचित रह जाते हैं। नतीजतन वे एमएसपी से काफी कम कीमत पर स्थानीय गल्ला व्यापारियों को अपनी फसल बेचने को मजबूर होते हैं। छोटी जोत वाले किसानों की तादाद देखें, तो उन्हें संगठित करने का कोई विकल्प नहीं है। देश के कॉरपोरेशन राजनीतिकरण के कारण अपने मकसद में नाकाम हो चुके हैं। इसलिए जरूरी है कि किसानों के संगठन बनें, क्योंकि छोटे किसान अपने तईं मोल-तोल नहीं कर सकते। संगठन कर सकते हैं। साफ है, मौजूदा संकट का इलाज कृषि बाजार में साहसिक सुधार के भीतर है, न कि सब्सिडी व कर्ज-माफी जैसे कदमों में

Date: 11-08-17

भ्रष्टाचार के खिलाफ

बारह साल पुराने इस मामले को अब लोग भूल भी चुके थे। राजनीतिक क्षेत्रों में भी यह मान लिया गया था कि नगदी लेकर सवाल पूछने के 2005 के मामले में राजनीतिक न्याय हो चुका है, इसलिए अब इसे खत्म अध्याय समझ लेना चाहिए। यह मामला एक चैनल में प्रसारित स्टिंग ऑपरेशन का था, जिसके दौरान 11 संसद सदस्य सदन में वह सवाल पूछने को तैयार हो गए थे, जिसके लिए उन्हें बाकायदा भुगतान किया जा रहा था। इस भंडाफोड़ के बाद कई तरह की बहसें चली थीं। आरोप-प्रत्यारोप भी उछले थे। इन 11 सदस्यों में पक्ष-विपक्ष और कई दलों के सांसद शामिल थे, इसलिए आरोपों की यह राजनीति ज्यादा चलने वाली भी नहीं थी। अंत में बहस के बाद इन सभी सदस्यों की सदस्यता खत्म कर दी गई थी। इस फैसले के खिलाफ बर्खास्त सांसदों ने सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाया था। सुप्रीम कोर्ट के खंडपीठ ने इन सांसदों की सदस्यता खत्म करने के फैसले को सही ठहराया था। इसके बाद यह मान लिया गया कि न्याय हो चुका है। लेकिन अब विशेष अदालत ने जो फैसला दिया है, उसका संदेश यही है कि आरोपी सांसद इतनी आसानी से नहीं बच सकते। अदालत ने इन सांसदों के विरुद्ध भ्रष्टाचार निरोधक कानून और आपराधिक षड्यंत्र की धाराओं के तहत अरोपपत्र तैयार करने

को कहा है। जाहिर है कि यह कानून की प्रक्रिया है, जो अभी लंबी चलेगी। आरोप पत्र तैयार होने और मुकदमा चलने का अर्थ सजा हो जाना नहीं होता। और अभी हमें पता नहीं है कि अंतिम फैसला क्या होगा? यह तय है कि इस फैसले का देश की भावी राजनीति पर बड़ा असर दिखाई देगा।भारत में सवाल पूछने के बदले सांसदों के धन लेने का जो मामला 2005 में हुआ, लगभग वैसा ही एक मामला उससे 11 साल पहले ब्रिटेन में हुआ था। भारत में तो यह महज एक स्टिंग ऑपरेशन था, जबकि ब्रिटेन में एक कंपनी की लॉबींग और उससे जुड़े सवालों के लिए पैसा लिया गया था। वहां इस मामले को एक अखबार ने उजागर किया था। वहां भी इस मामले में संसदीय समितियों में लंबी बहस हुई थी। कई बार कहा गया था कि यह मामला ब्रिटेन की राजनीति का चेहरा बदल देगा। लेकिन अंत में सिर्फ इतना ही हुआ कि जिन पर अरोप सिद्ध हुए, उन सदस्यों की सदस्यता खत्म हो गई और जिन पर नहीं सिद्ध हुए, वे बाद में चुनाव हार गए। लेकिन इससे ज्यादा कुछ नहीं हुआ। अच्छी बात यह है कि भारतीय न्याय-व्यवस्था इस मामले को कानूनी अंजाम तक ले जाती दिख रही है।इस मामले को हमें एक दूसरे ढंग से भी देखना होगा। अगर कोई सरकारी कर्मचारी भ्रष्टाचार के मामले में पकड़ा जाता है, तो सबसे पहले उसे उसकी नौकरी से बर्खास्त किया जाता है। साथ ही उस पर भ्रष्टाचार के खिलाफ बनी विभिन्न धाराओं के तहत मुकदमा चलाया जाता है। जाहिर है, यही तरीका माननीय जन-प्रतिनिधियों के मामले में भी उठाया जाना चाहिए। यह ठीक है कि सरकारी नौकरी और किसी प्रतिनिधि सदन की सदस्यता एक बराबर चीज नहीं है। लेकिन भ्रष्टाचार के मामले में सिर्फ सदन की सदस्यता खत्म होने को मुकम्मल कार्रवाई नहीं माना जा सकता, उसके लिए देश के कानून के तहत प्रक्रिया चलनी ही चाहिए। विशेष अदालत का फैसला इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि यह एक जन-प्रतिनिधि को देश के सामान्य नागरिक के बराबर खड़ा कर देता है। जो जरूरी भी है और न्याय संगत भी। हम यह भविष्यवाणी तो नहीं कर सकते कि इससे राजनीतिक भ्रष्टाचार खत्म हो जाएगा, लेकिन यह तो कहा ही जा सकता है कि राजनीतिक भ्रष्टाचार अब पहले की तरह आसान और निरापद नहीं रहेगा।

Date: 11-08-17

बदलते मौसम की मार भी पड़ रही है खेतों पर

महेंद्र राजा जैन, (ये लेखक के अपने विचार हैं)

अमेरिका की कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी, बर्कले द्वारा किए गए एक अध्ययन में यह निष्कर्ष निकला है कि लगभग 60 हजार भारतीय किसानों और कृषि कार्य में लगे लोगों द्वारा की गई आत्महत्या का कारण जलवायु परिवर्तन है, जिसके कारण इसी प्रकार के व्यवसायों में लगे कुछ अन्य लोग भी प्रभावित हुए माने जा सकते हैं। यह नतीजा उस समय निकाला गया है, जब हम भारत में किसानों की खुदकुशी को कृषि और आर्थिक नीतियों का परिणाम मानते हुए कर्ज-माफी की राजनीति कर रहे हैं।इस अध्ययन के अनुसार, तापमान में प्रतिदिन केवल एक डिग्री सेल्सियस की बढ़त बुआई के मौसम में 67 आत्महत्याओं का कारण बन सकती है। इसी प्रकार, किसी एक दिन में पांच डिग्री सेल्शियस की बढ़त 335 से ज्यादा किसानों की मृत्यु का कारण बन गई।

पिछले महीने (जुलाई) में अमेरिका की नेशनल एकेडेमी ऑफ साइंस के जर्नल में प्रकाशित इस लेख में बतलाया गया है कि पिछले 30 वर्षों में भारतीय कृषि सेक्टर में 59,300 लोगों की आत्महत्या का कारण जलवायु परिवर्तन ही है। बुआई के बाद के सीजन में तापमान में वृद्धि का आत्महत्या पर कोई असर नहीं पड़ा। इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि कृषि उद्योग में आत्महत्या में वृद्धि का कारण जलवायु परिवर्तन ही है।इसी अध्ययन से यह भी पता चला है कि प्रतिवर्ष वर्षा काल में सिर्फ एक डिग्री सेल्सियस की वृद्धि से आत्महत्या में सात प्रतिशत की कमी हुई। दो साल तक लगातार अधिक वर्षा होने के कारण आत्महत्या के मामलों में उल्लेखनीय कमी देखी गई। भारत में कृषि सेक्टर में पिछले वर्ष आत्महत्याओं की संख्या में यद्यपि कमी आई है, लेकिन कुछ प्रदेशों में यह अब भी संक्रामक स्तर पर है।

सूखाग्रस्त महाराष्ट्र का उदाहरण देते हुए इसमें कहा गया है कि पिछले वर्ष के शुरू के चार माह में ही 852 किसानों ने आत्महत्या की, जबकि उसके पहले 2015 में देश भर में 12,602 किसानों ने आत्महत्या की, जिसे सबसे बुरा वर्ष कहा जा सकता है। वर्ष 1995 से अब तक तीन लाख से अधिक किसानों ने आत्महत्या की है।हाल के कुछ महीनों में दिल्ली के जंतर-मंतर पर तमिलनाडु के किसानों के नरकंकाल और हड्डियों के ढेर लगाकर कई तरह से नाटकीय प्रदर्शन किए थे। इसकी वजह से पूरे देश का ध्यान उनकी ओर गया। कहा जाता है कि पिछले 140 वषा में तमिलनाडु में ऐसा सूखा नहीं पड़ा, जैसा पिछले साल पड़ा था। इसके कारण वहां बड़ी संख्या में किसानों को आत्महत्या के लिए मजबूर होना पड़ा। इन आत्महत्याओं का एक कारण किसानों द्वारा बैंकों से लिया गया कर्ज भी कहा जाता है, जिसे वे अदा नहीं कर पा रहे थे। समस्या को अगर हम इस अध्ययन से जोड़कर देखें, तो नतीजा यह भी निकल सकता है कि

तापमान बढ़ने के कारण उपज कम हुई और किसान अपने कर्ज चुकाने की हालत में नहीं रह गए।पिछले वर्ष भारत सरकार द्वारा फसलों के बीमा के लिए लगभग 80 अरब रुपये की बीमा योजना शुरू की गईर् थी, कहा जाता है कि इसकी वजह से किसानों और कृषि क्षेत्र में काम करने वालों की आत्महत्या में कमी आई है। इस अध्ययन में यह भी बतलाया गया है कि भारतीय किसान जलवायु परिवर्तन के कारण होने वाली हानियों को दृष्टिगत न करते हुए अब भी पुराने ढर्रे पर काम करते आ रहे हैं, जबकि जरूरत यह है कि वे अपनी कार्य-प्रणाली में कुछ परिवर्तन करें। जब तक किसानों को जलवायु परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए कृषि प्रणाली में सुधार की ओर ध्यान नहीं दिलाया जाएगा, तब तक किसानों द्वारा की जाने वाली आत्महत्या में कमी होने का कोई आसार नजर नहीं आता।किसानों की आत्महत्या के कारण चाहे कर्ज रहे हों, गलत कृषि नीतियां रही हों या तापमान का बढ़ना, हर हाल में सरकार के पास एक ही तरीका है कि वह आर्थिक व कृषि नीतियों से इस समस्या का समाधान खोजे। तापमान के बढ़ने या मौसम बदलने का किसानों और उपज पर असर पड़ना तय है। अगर सरकारी नीतियां इसका समाधान किसानों और खेतों तक नहीं पहुंचाती, तो नुकसान सिर्फ किसानों का ही नहीं, देश की पूरी अर्थव्यवस्था का होगा। बदलते मौसम में पुराने तौर-तरीके नहीं चलेंगे